ISSN 0973-8541, HUMANITIES AND DEVELOPMENT, VOL.20, No.1, Jan. – Mar., 2025/33

समकालीन यात्रा–वृत्तान्तों में वर्णित मिथक–कथाएं

परेश कुमार पाण्डेय एवं मनीषा मिश्रा

https://doi.org/ 10.61410/ had.v20i1.226

शोध सारांश – मिथक शब्द अंग्रेजी के मिथ तथा ग्रीक भाषा के माइथॉस से निकलकर हिन्दी में आया है जिसका अर्थ होता है अनुश्रुत या काल्पनिक कथा। यह कथाएं मूल रूप से पारंपरिक होती हैं और धार्मिक विश्वासों से जुड़ी होती हैं। इसमें असाधारण या अलौकिक घटनाओं अथवा देवी देवताओं के विशिष्ट विवरण मिलते हैं। मिथक कथाओं की प्रमाणिकता या विश्वासनीय बनाने का कोई यत्न नहीं किा जाता अपितु ये स्वयं ही अपने का आधिकारिक व तथ्यात्मक विवरण के रूप में प्रस्तुत करती हैं। समकालीन यात्रा वृतांतकारों के यात्रा वृतांतों में पर्याप्त मात्रा में मिथ कथाओं का उल्लेख मिलता है।

शब्द संकेत – माइथॉस, अनुश्रुत, आख्यान, सम्प्रेषण, लोमानस, त्रिविक्रम, उच्छृंखल, सौतिया–डाह, मॉनेस्ट्री, कुहेलिका, निःसृत।

मिथक शब्द अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है। यह शब्द यूनानी के 'माइथोस' तथा लैटिन के 'मिथस' से व्युत्पन्न हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ है– मौखिक कथा, आप्तवचन अथवा अतर्क्य कथन। कोशगत अर्थ में 'मिथक' परम्परागत तथा अनुश्रुत कथा है जो किसी अतिमानवीय तथाकथित प्राणी या घटना से सम्बन्ध रखती है। विशेषतरू इसका सम्बन्ध विश्व की उत्पत्ति तथा विश्ववासियों से होती है अर्थात् ऐसी कथाएं जिसे कहने और सुनने वाले इसे सृष्टि या ब्रह्माण्ड सम्बन्धी तथ्य मानते हैं। यह एक ऐसा विश्वास है जो बिना किसी तर्क के स्वीकार कर लिया जाता है।

मिथक के पीछे पूर्व धारणा या विश्वास की शक्ति निहित होती है। भारतीय संस्कृति पर दृष्टि डालें तो पता चलता है कि मिथक का आधार हमारी पुराकथाएं, देवकथाएँ तथा पौराणिक आख्यान ही हैं जो हमारी तर्कबुद्धि, द्वारा प्रमाणित तो नहीं होते किन्तु काव्य सत्य को अवश्य पुष्ट करते हैं। लोक मानस में गहरी पैठ होने के कारण इनकी संप्रेषण क्षमता अधिक तथा प्रभावी होती है। वास्तविकता यह है कि लोकमानस मिथकों के बिना रह ही नहीं सकता, उसे तो कुछ ऐसा चाहिए जिसे वह तर्क और बुद्धि से परे होकर हृदय से स्वीकार कर सके। आज के बौद्धिक युग में ऐसी बहुत सी बातों को आडम्बर, अन्ध– विश्वास या दन्तकथा कहकर अस्वीकार भी किया जाता है, फिर भी मिथकों का महत्त्व कम होने वाला नहीं है। देश के विभिन्न धार्मिक स्थलों से जुड़ी हुई मिथक कथाएं वहाँ के स्थानीय जन–मानस में प्रचलित होती हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी लिखित या मौखिक रूप में चलती रहती हैं। यात्राकारों द्वारा धार्मिक या सांस्कृतिक दृष्टि से की गयी यात्राओं पर आधारित यात्रा–वृत्तान्तों में इन मिथक कथाओं का वर्णन मिलता है। समकालीन यात्रा–वृत्तान्त लेखकों में राकेश तिवारी, अजय सोडानी, गोविन्द मिश्र, ऋषभ भरावा, अमृत लाल वेगड़ आदि के यात्रा–साहित्य में मिथक कथाओं का वर्णन हुआ है।

यात्रा वृत्तान्तकार राकेश तिवारी अपने यात्रा–वृत्तान्त 'सफर– एक डोंगी में डगमग' में गंगानदी से जुड़ी एक मिथक कथा का चित्रण करते हुए लिखते हैं– '' वामन विष्णु के त्रिविक्रम रूप धारण करने पर ब्रह्मा ने गंगाजल से उनका पद प्रच्छालन किया। कहते हैं गंगा विष्णु के चरणों से निकली। कथा है कि ही एक अवसर पर उच्छृंखल गंगा जह्नु ऋषि का आश्रम बहा ले जाने को उद्धत हो गयीं तो उन्होंने गंगा को अँजुली में लेकर पी लिया और बाद में कान से निकाला। ये सारी कथाएं प्राचीन प्रतिमाओं में बड़ी कुशलता से सफलता पूर्वक अंकित की गयी हैं। क्षेत्रीय परंपराओं एवं मान्यताओं के अनुसार एक कथा का तो बहुत रोचक तादात्म्य हुआ है। सौतन गंगा के आगमन से पार्वती अवश्य

- **शोध निर्देशक –आचार्य हिन्दी–विभाग, का०सु० साकेत स्ना० महाविद्यालय, अयोध्या।**
- **शोध– छात्रा – हिन्दी–विभाग, डॉ० रा०म० लो० अवध वि० वि० अयोध्या।**

रुष्ट हुई होंगी, ऐसा सोचकर भारतीय प्रतिमाओं में पार्वती को रोषपूर्ण मुद्रा में और दक्षिण–पूर्व एशिया स्थित कम्बोडिया में जहाँ सौतिया– डाह की गुंजाइश नहीं है, दोनों को प्रसन्नतापूर्वक शिव के साथ रहते दिखाया गया है।''[1] इसी कड़ी में यात्राकार वाराणसी नगर के प्रसिद्ध पाँच तीर्थ स्थलों में से एक 'असिसंगम' तीर्थ के नामकरण से जुड़ी मिथक कथा के बारे में बताते हुए लिखते हैं– ''शंकर तो पापियों को रोकने के लिए भक्त हरिषेण को नगर का दण्डपाणि बनाकर निश्चिन्त हो गये, परंतु दुर्गम–दैत्य का वध करने वाली दुर्गा इस तथ्य से भली भांति परिचित थीं कि इतनी बड़ी नगरी में धर्म स्थापना कितना मुश्किल काम है, सो उन्होंने हरिषेण की सहायता के लिए शुम्भ–निशुम्भ के संहारोपरान्त अपनी रक्तरंजित असि (तलवार) नगर की दक्षिण सीमा पर फेंक दी। इस झटके से धरती फट चली और पापियों को पापी दैत्यों की दुर्गति–कथा सुनाती, सचेत करती, धर्म रक्षक, दुर्ग की बाह्य परिखा (खाई) जैसी, पाप–विनाशिनी, 'असिधारा' प्रवाहित हुई।''[2] उपरोक्त उद्धरणों के माध्यम से यात्रा लेखक ने गंगा नदी से जुड़ी दो अलग–अलग मिथक कथाओं का उल्लेख कर समाज की मान्यता की ओर संकेत किया है।

केरल के गुरुवायोर मंदिर में प्रतिष्ठित विग्रह (मूर्ति) से जुड़ी एक मिथक–कथा का वर्णन करते हुए यात्रा–वृत्तान्त लेखक गोविन्द मिश्र अपने यात्रा–वृत्तान्त 'झूलती– जड़ें' में लिखते हैं– ''ऐसी मान्यता है कि इस मंदिर में प्रतिष्ठित विग्रह वही है जो विष्णु ने ब्रह्मा को दिया, ब्रह्मा ने कश्यप मुनि को। कश्यप और उसकी पत्नी ने वसुदेव और देवकी के रूप में अवतार लिया था। उनके हुए कृष्ण, जिन्होंने स्वयं द्वारिका में ही इस विग्रह की पूजा की थी। जब द्वारिका के डूब जाने की बात थी और कृष्ण भी जाने लगे, तब उन्होंने उद्धव से कहा कि गुरु (बृहस्पति) और वायु की सहायता से इसे उपयुक्त क्षेत्र में प्रतिष्ठित करो। तो बना गुरुवायोर मंदिर! मंदिर उतना विशाल और भव्य नहीं है, जितने दक्षिण के दूसरे मंदिर। उल्टे सादगी है। इसलिए शान्ति भी है।''[3]

इसी तरह यात्रा–वृत्तान्त लेखक अजय सोडानी अपने यात्रा– वृत्तान्त ''दरकते हिमालय पर दर–ब–दर'' में ग्यारह से चौदह हजार फीट की ऊँचाई पर मिलने वाले, उत्तर–प्रदेश व उत्तराखण्ड का राजपुष्प व हिमालय के फूलों का राजा कहलाने वाले ब्रह्मकमल से जुड़ी तीन मिथक कथाओं का जिक्र करते हुए उसकी उत्पत्ति सम्बन्धी मान्यताओं के बारे में बताते हैं। पहली मिथक कथा है– ''मृतप्राय लक्ष्मण जब संजीवनी के संसर्ग में आ जीवित हो गये तब देव लोक प्रसन्न हो नाच उठा। इजहार–ए–खुशी करने के बायस और लक्ष्मण का अभिनंदन करने की मंशा से देवता स्वर्ग से पुष्पवर्षा करने लगे। वैसे स्वर्ग से पुष्पवर्षा करने का यह प्रथम अवसर न था, पर इस बार एक विशेष गुंजा धरा पर अवश्य फेंका गया जो इस लोक की 'फूलों की घाटी' में स्थापित हो कालान्तर में ब्रह्मकमल कहलाया।''[4] इसी कड़ी में ब्रह्मकमल की उत्पत्ति सम्बन्धी दूसरी मिथक कथा बताते हुए वे लिखते हैं–''विडम्बना है कि मानव परीलोक सदृश लोक पाने की आकांक्षा करते सारा जीवन काटता है और हूरें धरा पर आ आडम्बर–मुक्त जीवन के कुछ क्षणों का स्वाद चखने को आतुर रहती हैं। ऐसी ही अधीरता ने एक बार परीलोक की राजकुमारी से राजाज्ञा का उल्लंघन करवाया और राजकुमारी धरा पर आ झरनों, तालाबों, जंगलों का आनन्द लेने लगी। विदेशी बालाओं को छेड़ने के आदी एक भारतीय दानव से उसका सुख न देखा गया। उसने आव देखा न ताव, राजकुमारी का हरण कर एक गुफा में बंद कर दिया। राजकन्या की सहचरियों ने बहुत मेहनत से एक राजकुमार ढूँढ निकाला, जिसने राजकुमारी को न सिर्फ कैद–मुक्त किया, बल्कि उस तोते का टेंटुआ भी तोड़ा जिसमें दानव की जान बसती थी। हूरों की राजकुमारी ने स्वयं को समर्पित कर. राजकुमार का ऋण चुकाया, पर यह बात परी लोक की महारानी को नागवार गुजरी। उसने राजकुमारी को सब भूल परीलोक लौटने का आदेश दिया, जिसको अमान्य करने पर रानी ने उस राजकुमारी को एक फूल बना दिया – ब्रह्मकमल।''[5] ब्रह्मकमल की उत्पत्ति की तीसरी मिथक कथा बताते हुए वे पुनः लिखते हैं– ''हर नन्दा अष्टमी को प्रसाद के रूप में वितरित किये जाने वाले इस पुष्प का चिकित्सकीय उपयोग भी पौराणिक काल से

जारी है। कथा है कि शंकर ने गणेश का मस्तक तो काट दिया पर पार्वती की जिद पूरी करने के लिए दूसरा मस्तक लगा उसे पुनः जीवित करना शंकर के लिए मुश्किल हो रहा था। सम उम्र हाथी का सिर तो मिल गया, पर वह धड़ से जोड़ा किस तरह जाए, कोई जुगत काम ही न करती थी। तब ब्रह्मा ने ऐसे फूल की रचना की, जिसकी पंखुरियों से अमृत चूता हो। ब्रह्मा सृजित ब्रह्मकमल की पंखुड़ियों से टपकी बूँदें ही हाथी के शीश को गणेश के धड़ से जोड़ पायीं।''[6] लेखक ने हिमालय पर्वत की 'कालिन्दागिरि' पर्वत श्रृंखला पर स्थित 'बन्दरपूँछ' ताल के बारे में प्रचलित मिथक कथा के बारे में फ्रेजर की पुस्तक का उल्लेख करते हुए लिखा है कि– ''कहते हैं कि बन्दर पूँछ शिखरों के मध्य एक खड्ड है, जिसमें खूब जल भरा है। लंका दहन के बाद जब पूँछ की आग बुझाए न बुझती थी तो हनुमान ने भयभीत हो समुद्र का रुख किया। धू–धू जलती पूँछ को अपने जल में डुबोने की हनुमान की मंशा जान समुद्र घबरा गया। महाअग्नि से उसका स्वयं सूख जाना तय था। किन्तु रामभक्त को मना करने का खामियाजा भी तो वही उठाता। सो तितिक्षा कामना करते हुए हनुमान को समझाया कि चाक्षुष तौर पर साधारण दिखने वाला उसका जल अनेक जलचरों का घर है। प्रचण्ड आग के ताप से समस्त समुद्री जीव–जन्तु अकालमृत्यु को प्राप्त हो जाएंगे। परेशान पवन–पुत्र को तब सागर ने हिमालय के उस ताल का पता बताया जिसमें जल तो अथाह था पर कोई जीव नहीं। हनुमान की भभकती पूँछ को आखिरकार उसी ताल के जल ने शान्त किया जो हमारे सामने के उन शिखरों के मध्य स्थित है। सम्भवतः इसी घटना के उपरान्त कालिन्दागिरि को बंदरपूँछ कहा जाने लगा और कालिन्दी नदी सिर्फ यमुना के नाम से प्रचलित हो गयी।''[7]

यात्राकार ऋषभ भरावा अपने यात्रा वृत्तान्त 'चलो– चलें कैलाश' में चीन के तकलाकोट के समीप स्थित 'खोरजाक– मोनेस्ट्री (खोचरनाथ मंदिर) की मिथक कथा का वर्णन करते हुए रामायण काल से उसका सम्बन्ध बताते हैं। वे इस मंदिर में देवी सीता की पूजा किये जाने का वर्णन करते हुए लिखते हैं– ''पूरे लाल रंग के पत्थरों से बनी इस मोनेस्ट्री में भी हमें जाने का मौका मिला। यह मोनेस्ट्री किसी छोटे से गाँव में बनी हुई थी अंदर प्रवेश करने पर एक बड़ी–सी देवी की प्रतिमा दिखायी दी जिसके साथ दो देवताओं की छोटी प्रतिमाएं भी थीं। भारतीय लोग इन्हें राम, लक्ष्मण और सीता की प्रतिमा मानते हैं। यहाँ के लिए कहा जाता है कि रावण का अन्त कर जब श्रीराम पृथ्वी पर अपने अवतार के अंतिम समय में थे, तब उन्होंने अयोध्या में अश्वमेघ यज्ञ करवाया, जहाँ लव–कुश को लेकर सीतामाता वहाँ पहुँची और दोनों को श्रीराम के पास छोड़ खुद धरती में समा गयीं। पृथ्वी की गोद में समाने के बाद सीतामाता को स्वर्ग में आना था तो उन्होंने कैलाश जाने वाला मार्ग अपनाया और नेपाल के 'छंगरु' से होते हुए स्वर्ग भूमि पर 'खोचरनाथ' नामक स्थान पर प्रकट हुई। तिब्बती धर्मगुरु के अनुसार इसी दिव्य ज्योति को पूजने के लिए राम एवं लक्ष्मण का होना भी जरूरी था तो इसी ज्योति के पास दोनों की मूर्तियाँ भी बनवायी गयीं।''[8]

सुप्रसिद्ध समकालीन यात्रा–वृत्तान्त लेखक अमृतलाल वेगड़ के यात्रा–वृत्तान्त 'तीरे–तीरे नर्मदा' में 'नयन न तिरपित भेल' शीर्षक लेख में नर्मदा नदी के जन्मकथा सम्बन्धी मिथक में मोहनलाल वाजपेयी जी लिखते हैं– ''नर्मदा की जन्मकथा पुराणों की मोहमयी कुहेलिका से उभरकर हमारे सामने आती है। नर्मदा शिव तनया है। किसी अनादि काल में भगवान शंकर पर्वत–शिखर पर ध्यान में मग्न थे। उनके अनजाने ही किसी समय उनके नीलकण्ठ से नर्मदा निःसृत हुई। जन्म लेते ही वे शिव की तपस्या में लीन हो गयीं। शिव ने नयन खोले तो इस असाधारण तपस्विनी को देखकर चकित हुए। यौवनदीप्त स्निग्ध–श्यामल ऋजुदेह को तप के अनुशासन की स्वर्ण कठिन आभा ने जैसे कसकर बाँध दिया हो। नेत्रों में बिजली कौंध रही है। देखकर शिव प्रसन्न हुए। वर दिया– तुम अमृतमयी होगी। जो फल तीर्थवारि में अवगाहन से होता है–वह तुम्हारे दर्शनों से ही सुलभ होगा। तुम आकांक्षा के अनुरूप चिरकुमारी होगी। मुझे तुम निरंतर अपने निकट पाओगी। कलिकाल में तुम पतितपावनी गंगा के समग्र माहात्म्य की अधिकारिणी होगी।''[9]

इस प्रकार समकालीन यात्रा–वृत्तान्तों के अध्ययन– विवेचन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल से चली आ रही मिथक कथाएं किसी न किसी रूप में लोक मानस में आज भी प्रचलित हैं और जब तक यह सृष्टि विद्यमान है तब तक मिथक कथाएं भी परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी सुनने और पढ़ने को मिलती रहेंगी। यदि कहा जाय कि मिथक कथाओं के अभाव में सृष्टि का होना असंभव है, तो इसमे कोई अतिशयोक्ति नही होगी। अतः कहा जा सकता है कि मिथक कथाओं का आधुनिक विचारधारा से भी अद्‌भुत साम्य है, आधुनिकता के अन्धानुकरण में मिथक–कथाओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची

1. राकेश तिवारी, सफर एक डोंगी में डगमग, पृष्ठ–147
2. वही, पृष्ठ– 105
3. गोविन्द मिश्र, रंगों की गंध–2, पृष्ठ–94
4. अजय सोडानी, दरकते हिमालय पर दर–ब–दर, पृष्ठ–99
5. वही, पृष्ठ– 100
6. वही, पृष्ठ– 100–101,
7. वहीं, पृष्ठ– 146
8. ऋषभ भरावा, चलो चलें कैलाश, पृष्ठ–145–146 9. अमृत लाल वेगड़, तीरे–तीरे नर्मदा, पृष्ठ– 9
9. अमृतलाल वेगड़, तीरे–तीरे नर्मदा, पृष्ठ– 9